वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 262

गणिनी ज्ञानमती माताजी
''एक बेमिसाल व्यक्तित्व''

–: लेखक :–

प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन, फिरोजाबाद

परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की आर्यिका दीक्षा के 50 स्वर्णिम वर्षों की सम्पूर्ति पर 14, 15 व 16 अप्रैल 2006 को आयोजित ''आर्यिका दीक्षा स्वर्ण जयंती महोत्सव'' के शुभ अवसर पर प्रकाशित

–प्रकाशक–

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

फोन नं.- (01233) 280184, 280236

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

–: निर्देशन :–

धर्मदिवाकर पीठाधीश क्षुल्लकरत्न श्री मोतीसागर जी महाराज

–: सम्पादक :–

कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण	वैशाख कृ. 2, वीर नि. सं. 2532	मूल्य
3300 प्रतियाँ	दिनाँक 15 अप्रैल 2006	10.00
	आर्यिका दीक्षा स्वर्ण जयंती	

कम्पोजिंग-ज्ञानमती नेटवर्क

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

सम्पादकीय

–कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन

वैसे तो संत और महापुरुष कभी किसी परिचय के मोहताज नहीं होते हैं, उनका कृतित्व ही खुली जबान से उनके व्यक्तित्व की कहानी जन-जन में प्रदर्शित करता है तथापि इतिहास पन्नों पर ही सुरक्षित रहता है, इस बात को स्मरण में रखते हुए स्वतः ही विद्वानों की कलम महापुरुषों के गुणगान हेतु उठ जाती है।

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी उन्हीं महापुरुषों की श्रृँखला में हैं जिनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व को सदियों तक याद किया जाता रहेगा। जैन समाज में पूज्य माताजी के कार्यकलापों, प्रतिभाशक्ति और गुणसम्पदा की कोई जोड़ नहीं है। अगम्य ज्ञान की धनी पूज्य माताजी ने साधु जीवन की कठोर चर्या का निर्दोष पालन करते हुए जैनधर्म की ऐतिहासिक प्रभावना के साथ अपनी आर्यिका दीक्षा के 50 वर्षों को पूर्ण किया है। यह सदी का सबसे महत्वपूर्ण अवसर है। आर्यिका दीक्षा स्वर्ण जयंती की इस पावन बेला में पूज्य माताजी के जीवन दर्शन पर आधारित यह एक संक्षिप्त पुस्तिका ''गणिनी ज्ञानमती माताजी : एक बेमिसाल व्यक्तित्व'' का प्रकाशन किया जा रहा है। इस पुस्तिका में पूज्य माताजी के बचपन से लेकर आर्यिका दीक्षा तक और दीक्षित जीवन के इन 50 वर्षों में उनके द्वारा किये गये कार्यकलापों, उनकी रचनात्मक विचारधारा, सृजनात्मक चिंतन और वैराग्यमयी चर्या का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। इस पुस्तक के लेखक जैन समाज के वरिष्ठ विद्वान प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी ने अपनी प्रबल लेखनी से सुगठित, रुचिकर और प्रभावी शैली में अनेक दृष्टान्तों के साथ पूज्य माताजी के परिचय को जन-जन के लिए ज्ञानोपयोगी बनाते हुए यहाँ प्रस्तुत किया है, जिससे पाठकगण विषयवस्तु को रुचि के साथ पढ़ेंगे, ज्ञान प्राप्त करेंगे और सरलता से समझकर उसे आगे स्मरण में भी रख सकेंगे।

पूज्य माताजी की आर्यिका दीक्षा स्वर्ण जयंती के अवसर पर उनके स्वस्थ, मंगल एवं दीर्घ जीवन की शुभकामना करते हुए उनके श्रीचरणों में शत-शत नमन।

आभार

इस पुस्तिका के प्रकाशन में श्री चन्द्रप्रकाश जैन, सौ. त्रिशला जैन-नाका हिन्डोला, लखनऊ एवं उनके सुपुत्र चि. अरिहंत जैन-पुत्रवधू सौ. रोली जैन तथा अभिषेक जैन ने ज्ञानदान स्वरूप आर्थिक सहयोग प्रदान किया है। एतदर्थ संस्थान उनका आभारी है।

-सम्पादक

मंगल आशीर्वाद

जिस प्रकार जैन समाज में आर्यिकाशिरोमणि के रूप में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का स्थान है, उसी प्रकार वर्तमान विद्वत् वर्ग में शिरोमणि विद्वान के रूप में प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी का नाम अग्रगण्य है। आगम विशेषज्ञ, प्रभावक वक्ता, सरल-शालीन व्यक्तित्व के धनी प्राचार्य जी वर्तमान जैन समाज में उच्चकोटि के विद्वान् के रूप में सुप्रतिष्ठित हैं।

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की आर्यिका दीक्षा स्वर्ण जयंती के अवसर पर उनके जीवनवृत्त पर अपनी प्रभावक लेखनी के द्वारा रोचक तथ्यपूर्ण एवं प्रेरणास्पद विषयवस्तु प्रस्तुत पुस्तक में समाहित करके आपने गागर में सागर भरते हुए पूज्य माताजी के व्यक्तित्व वैशिष्ट्य को जनमानस के समक्ष जीवंत करने का सुंदर प्रयास किया है। आपके लेखन का सौष्ठव एवं लालित्य विशिष्ट ही है।

पूज्य माताजी के निकट आकर अनेकानेक बार उनकी चर्या, ज्ञान साधना, चारित्र निष्ठा का बारीकी से अवलोकन करते हुए प्राचार्य जी ने अपने विचारों को लेखनीबद्ध किया है, इसीलिए सुधी पाठकों को भी पूज्य माताजी के उच्च चारित्र से शिक्षा ग्रहण करने का अवसर प्राप्त हो सकेगा।

विद्वत् प्रवर प्राचार्य जी के लिए मेरा यही मंगल आशीर्वाद है कि जिस प्रकार सम्पूर्ण जीवन उन्होंने माँ जिनवाणी की साधना करके उच्चता के सोपानों पर आरोहण किया है, उसी प्रकार सदैव जिनवाणी एवं आगम पथ के पथिक गुरुओं के प्रति समर्पित रहते हुए यश एवं पुण्य का सम्पादन करते रहें। उनके स्वस्थ एवं यशस्वी जीवन के लिए मेरी मंगल कामना है।

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर **आर्यिका चंदनामती**

20-3-2006

गणिनी ज्ञानमती माताजी

''एक बेमिसाल व्यक्तित्व''

➢माताजी तो बेजोड़ हैं

* जैसे रसों में इक्षुरस और नदियों में गंगा श्रेष्ठ है, वैसे ही कन्याओं में **मैना** श्रेष्ठ थी।

* जैसे पुष्पों में कमल और सुगंधित पदार्थों में चन्दन श्रेष्ठ है, वैसे ही क्षुल्लिकाओं में **वीरमती** श्रेष्ठ थीं।

* जैसे ताराओं में चन्द्रमा और वनों में नन्दनवन श्रेष्ठ है, वैसे ही ज्ञान और शील में **आर्यिका ज्ञानमती** श्रेष्ठ हैं।

एक ही असाधारण व्यक्तित्व की मैना से वीरमती और वीरमती से ज्ञानमती तक की यह आध्यात्मिक यात्रा 20वीं-21वीं सदी के इतिहास की एक उल्लेख्य घटना है। उनकी चर्चा और चर्या को देख-सुनकर कौन मुग्ध नहीं होता है! आचार्य श्री हेमचन्द्र ने ठीक ही लिखा है– **'जिस किसी समय में, जिस किसी रूप में, जो कोई जिस किसी नाम से प्रसिद्ध हो, यदि वह वीतराग पथ का पथिक है, तो वह त्रिकाल वंदनीय है।'**

जातक या जन्मकुण्डली के आधार पर पूज्य माताजी से आयु में हम भले ही छह माह बड़े हैं, किन्तु त्याग-तप-साधना और ज्ञान-सम्पादन में वह हमसे कितनी ज्येष्ठ और श्रेष्ठ हैं, इसे समय के पैमाने से नापना संभव नहीं है। उनकी प्रशस्त प्रेरणा से आयोजित धार्मिक प्रशिक्षण-शिविरों में सम्मिलित होकर अन्य अनेक विद्वानों की भाँति ही हमें भी जैन तत्त्वविद्या के पारायण की प्रेरणा मिलती रही है। वह जगत् की धर्मगुरु तो हैं ही, हमारी तो विद्यागुरु भी हैं। उनकी आर्यिका दीक्षा की स्वर्ण जयंती पर हमारी यह विनयांजलि **'न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति'** की भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था की ही प्रतीक है।

➢स्वर्ण दीक्षा जयंती : एक दुर्लभ अवसर

आचार्य पूज्यपादस्वामी ने भव्य जीवों के लिए यह उपदेश दिया है– **'परोपकारमुत्सृज्य स्वोपकारपरो भव'** अर्थात्-परोपकार की अपेक्षा स्वोपकार में लगना हितकर है। परोपकार की भावना के विकास के लिए शिक्षा और स्वोपकार

की प्रेरणा प्राप्त करने के लिए दीक्षा आवश्यक है। शिक्षा व्यक्ति को बहिर्मुखीऔर दीक्षा अन्तर्मुखी बनाती है। एक से भोग और दूसरी से योग की ओर रुचि बढ़ती है। शिक्षा से इहलोक और दीक्षा से परलोक सुधरता है। जीवन में शिक्षा और दीक्षा दोनों की उपयोगिता है, परन्तु मुख्यता दीक्षा की ही है। कहा भी है–

आदहिदं कादव्वं, आदहिदं परहिदं च कादव्वं।
आदहिद-परहिदादो, आदहिदं सुट्ठु कादव्वं।।

गृहस्थ हो या विरक्त, दोनों के लिए आगम में स्वहितपूर्वक ही परहित की अनुमति दी गई है।

दीक्षा और प्रव्रज्या पर्यायवाची शब्द हैं। **'पवज्जा सव्वसंग परिचित्ता'** अर्थात् प्रव्रज्या या दीक्षा में पाप-मूल कहे गए सर्व परिग्रहों का त्याग करना होता है। परिग्रह-मुक्ति ही पाप-मुक्ति का हेतु है। महर्षि पुष्पदंत का कथन है– **'दीक्षां गृह्णन्ति मनुजाः स्वकर्महरणाय च स्वपुण्यवृद्धये, केचित् संसृति मुक्तये'** अर्थात् दीक्षा ग्रहण करने से कर्म की हानि, पुण्य की वृद्धि एवं संस्कृति (पंचपरावर्तनरूप संसार) से मुक्ति प्राप्त होती है। देवगण भी दीक्षा के लिए तरसते रहते हैं, परन्तु अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय होने से वे उसे ग्रहण नहीं कर सकते। धन्य हैं वे पुण्यशाली जीव, जो दीक्षा ग्रहण कर देव-दुर्लभ अपनी मानव पर्याय को सफल और सार्थक बना लेते हैं।

शिक्षा तो कोई भी प्राप्त कर सकता है, किन्तु दीक्षार्थी तो विरले ही होते हैं। बाल्यकाल से ही जिनके परिणाम वैराग्योन्मुख होते हैं, उनकी संख्या तो उँगली के पोरों पर ही गणनीय है। पूज्य ज्ञानमती माताजी उन्हीं अत्यल्पों में से एक हैं, जिन्होंने सांसारिक या इन्द्रियजन्य सुखों के प्रति अरुचि के संस्कार माता की घुट्टी के साथ ही प्राप्त कर लिये थे। दीक्षा की अवधि जितनी-जितनी लम्बी होती जाती है, उतनी-उतनी दीक्षित की गौरव-गरिमा बढ़ती जाती है। पूज्य माताजी का पचास वर्षों का दीक्षाकाल आज के भोग-प्रधान युग में किसी आश्चर्य से कम नहीं है। इस वर्ष वैशाख कृष्णा 2 (अप्रैल 15, 2006) को उनकी आर्यिका दीक्षा की स्वर्ण जयंती निःसंदेह एक दुर्लभ अवसर है। सौभाग्यशली हैं हम और हमारी पीढ़ी के वे सभी भक्तजन, जिनकी आँखों के सामने यह ऐतिहासिक प्रसंग उपस्थित हुआ है। जन-जन के मुख से इस समय एक ही ध्वनि निकल रही है– **'कुलं पवित्रं, जननी कृतार्था, वसुन्धरा पुण्यवती वभूव'।**

➢दीक्षा : एक नया जन्म

पक्षी और दाँत की तरह सन्त द्विजन्मा होता है। उसका पहला जन्म माता के गर्भ से होता है और दूसरा जन्म होता है आचार्य द्वारा प्रदत्त दीक्षा से। दीक्षा का अर्थ है-संसार, शरीर और भोगों से पूर्ण विरक्ति। साधु की दीक्षा तिथि ही उसकी वास्तविक जन्मतिथि है। दीक्षा के साथ ही पुरानी पर्याय का विसर्जन हो जाता है, नई पर्याय अस्तित्व में आ जाती है, नया नाम मिल जाता है, पुराना नाम छूट जाता है और बदल जाता है उसके सोच-विचार का ढंग। दीक्षा से पूर्व यह सुविधाभोगी होता है और दीक्षा के बाद उसके भीतर शुरू हो जाती है सुख की तलाश। क्षणभंगुर सुविधा और शाश्वत सुख के अंतर को वह समझने लगता है। **'मै रहूँ आप में आप लीन'** की दशा को वह प्राप्त हो जाता है। जो आत्मा का ध्यान करता है, वह शीघ्र ही सर्व दुःखों से मुक्त हो जाता है।

दीक्षा का पावन प्रसंग किसी भव्यात्मा के जीवन में किसी वरदान की प्राप्ति से कम महत्वपूर्ण नहीं है। वह परम पद की ओर ले जाने वाला एक असाधारण कदम है। जन्मजयंती का अर्थ तो होता है, पूर्व पर्याय (जो छूट गई है) का उत्सव, किन्तु दीक्षा जयंती तो वीतरागता और समता का महोत्सव है। किसी भी साधु या साध्वी की दीक्षा जयंती ही मनाई जानी चाहिए।

गणिनीप्रमुख पूज्य आर्यिका ज्ञानमती माताजी की दीक्षा स्वर्ण जयंती के इस अवसर पर हम उनके वर्तमान को उनकी अतीत पर्याय के आलोक में समझने की कोशिश भी करेंगे ही, लेकिन महत्ता तो वर्तमान की ही सर्वोपरि है। किसी ने ठीक ही कहा है– **'वर्तमान में ही अतीत के बीज को अंकुरित करने और भविष्य के बीज को बोने की क्षमता है।'**

➢जीवनवृत्त : जन्म एवं नामकरण

अवध प्रान्त के टिकैतनगर कस्बे में दिनाँक 22 अक्टूबर 1934 को सुश्रावक श्री छोटेलाल जी के घर में एक कन्यारत्न ने जन्म लिया। रात्रि में सवा नौ बजे जिस समय उसने अपनी आँखें खोलीं, उस समय निरभ्र आकाश पर पूनों का चाँद अपनी निर्मल ज्योत्सना बिखेर रहा था। वह वि.सं. 1991 की शरदपूर्णिमा की रात्रि थी। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार नवजात शिशु के भावी विकास में ग्रह, नक्षत्र, तिथि आदि का भी भारी प्रभाव पड़ना माना गया

है। यों तो हर माह की पूर्णिमा को चन्द्रमा अपनी सोलह कलाओं के साथ खिलता ही है, किन्तु शरदपूर्णिमा की तो बात ही कुछ निराली है। गाँवों में आज भी यह माना जाता है कि शरदपूनों की चाँदनी में यदि घी-बूरा मिलाकर रख दिया जाये और उसका अल्प मात्रा में रोज सेवन किया जाये तो आँखों की रोशनी बढ़ जाती है। नेत्र-ज्योति को सुरक्षित बनाए रखने के लिए आज भी महिलाएँ चाँदनी रात में सुई में धागा पिरोने का अभ्यास करती हुई देखी जाती हैं। यह शरदपूर्णिमा यदि इस रात्रि में जन्मे नवजात शिशु के ज्ञाननेत्रोन्मीलन में निमित्त बन जाए तो इसमें आश्चर्य कैसा! शरदपूर्णिमा भारतीय संस्कृति में पर्व के रूप में मान्य है। इस दिन धर्मनिष्ठ लोग व्रत रखते हैं। पूर्णिमा का चाँद उजास (प्रकाश) का प्रतीक है। प्रकाश तो सूर्य में भी होता है, पर उसमें प्रखरता होती है। पूर्ण चन्द्र का प्रकाश शीतल होता है। इस दिन जन्मी इस बालिका को जब पूनों की चाँदनी ने नहलाया, तो इसके पीछे यही संकेत छिपा था कि यह बालिका बड़ी होकर सर्वत्र ज्ञान का प्रकाश फैलायेगी और स्वयं महाव्रत अंगीकार कर सबको सुख-शीतलता प्रदान करेगी। अपनी प्रथम सन्तान के रूप में इस कन्या को जन्म देकर माता मोहिनीदेवी का मातृत्व गौरवान्वित हो गया।

भारत में अधिकांश लोग बेटे के जन्म पर खुशियाँ और बेटी के जन्म पर मातम मनाते हैं। यह खोटी परिपाटी कब से और क्यों चल पड़ी, यह तो भगवान जाने, परन्तु इस बेटी ने अपनी बालसुलभ किलकारियों और सस्मित मुख-छवि से अपने घर-आँगन में खुशियों की जो चाँदनी बिखेरी, तो बेटों पर गर्व करने वाले भी ठगे से रह गये। इस परिवार में बेटे-बेटियों के साथ कभी भेदभाव नहीं किया गया। पूर्णमासी का चाँद भी शायद यही कहने आता है कि वह चाँदनी का अवदान देने में जिस तरह किसी के साथ कोई भेदभाव नहीं करता, उसी प्रकार बेटा या बेटी के लालन-पालन में भी किसी को कभी कोई भेदभाव नहीं करना चाहिए।

समय की सुई अविराम गति से घूम रही थी। उसने मोहिनीदेवी की इस लाड़ली को बढ़ने का अवसर दिया। जब भी कोई शिशु जन्म लेता है, वह धरती पर अनाम ही आता है। जीव तो सूक्ष्म है, उसे पहचाना नहीं जा सकता। किसी मनीषी ने कहा है– **'नवजात की पहचान के दो माध्यम हैं- रूप और नाम। रूप तो वह अव्यक्त जगत् से लेकर आता है और नाम**

व्यक्त जगत् में आने पर आरोपित किया जाता है।' कुछ दिन बीतने पर कन्या के घरवालों ने भी इसकी पहचान के लिए शुभ मुहूर्त में इसका नामकरण संस्कार किया। नाम रखा गया– **मैना**। नाम मेंभी कुछ अव्यक्त संकेत छिपे होते हैं। कोई दूज को जन्म ले तो उसका नाम 'दौजी' रख देते हैं। किसी कल्याणक तिथि पर जन्मे बालक का नाम संबंधित तीर्थंकर के नाम पर रख दिया जाता है। भगवान महावीर के प्रचलित पाँचों नामों के पीछे भी कुछ संकेत निहित हैं। **मैना पक्षी के समान मधुर वाणी के कारण ही इस कन्या का नाम मैना रखा गया होगा।**

'मैना' नाम के पीछे कुछ आध्यात्मिक संकेत भी छिपे थे, अब हमें ऐसा लगता है। 'मैना' नाम 'मै' और 'ना' इन दो शब्दों से बना है। 'मै' का अर्थ है- अहंकार और ममकार। आत्म विकास में ये दोनों बाधक हैं। एक सन्त एवं एक जिज्ञासु के बीच हुआ वार्तालाप याद आ रहा है–

सन्त–'आर्य! तुमने सर्प की केंचुली को देखा है?'

जिज्ञासु–'हाँ, देखा है।'

सन्त–'केंचुली से क्या होता है?'

जिज्ञासु–'केंचुली आने पर सर्प अंधा हो जाता है।'

सन्त–'केंचुली के छूट जाने पर क्या होता है?'

जिज्ञासु–'वह देखने लग जाता है।'

सन्त ने उस जिज्ञासु को समझाया कि अहंकार और ममकार भी केंचुली के समान है। इनके रहते हुए मनुष्य अंधा हो जाता है, वह आत्मदर्शन नहीं कर सकता। 'मैना' का व्युत्पत्तिपरक अर्थ भी यही है कि जिसमें अहंकार और ममकार न हो, उसे कहते हैं-मैना। आज आयु के 72वें पायदान पर खड़ी मैना (सम्प्रति आर्यिका ज्ञानमती) ने अपने बचपन के नाम की सार्थकता सिद्ध कर दी है।

बचपन से पचपन तक माताजी का यही चिन्तन चलता रहा है– **'अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम'** अर्थात् मैं तो कुछ भी नहीं हूँ, जो कुछ हो सो तुम्ही हो। मैं तो तुम्हारी शरण में हूँ। 'वीतरागस्तव 17/7' में भी भक्तकवि ने यही प्रार्थना की है–

एकोहं नास्ति मे कश्चिन, न चाहमपि कस्यचित्।
त्वदंह्रिशरणस्थस्य , मम दैन्यं न किंचन।

मैं अकेला हूँ। मेरा कोई नहीं है। मैं भी किसी का नही हूँ। फिर भी तुम्हारे चरण की शरण में स्थित हूँ, इसलिए मेरे मन में किंचित् भी दीनता नहीं है।

पूज्य माताजी ने अपने बचपन के नाम की सार्थकता इस अर्थ में भी सिद्ध की है कि वह घर की प्राचीर में कैद होकर नहीं रह सकीं, मैना पक्षी की तरह वैराग्य के मुक्त आकाश में विचरण कर रही हैं।

➢क्षयोपशम : खुलते गए ज्ञान के स्रोत

मैना बचपन से ही सौम्य, सुकुमार और शालीन तो थी ही, भव्यत्व भाव भी पूर्व जन्म के संस्कारों के प्रभाव से अपने साथ लेकर आई थी। यह भव्यत्व भाव उसी में प्रकट होता है, जिसमें ज्ञान की प्यास, सत्य-शोध की मनोवृत्ति, आत्मोपलब्धि का प्रयत्न और आन्तरिक अनुभूति की तड़प पाई जाती है। मैना में ये चारों ही गुण जन्म से ही शनैः-शनैः विकसित होते हुए देखे जा रहे थे।

मैना के मन में हितकर वार्ता को सीखने और समझने की उत्कट ललक थी। उसका क्षयोपशम भी प्रबल था। जिस चर्चा को कई-कई बार पढ़-सुनकर भी अन्य समवयस्क आत्मसात नहीं कर पाते थे, उसे वह एक-दो बार पढ़कर ही हृदयंगम कर लेती थी। अकलंक-निकलंक जैसा भाग्य पाया था उसने। वह कहती भी है– **'कई एक ग्रंथों को पढ़ते समय मुझे ऐसा लगता था कि मानों उसे मैंने पहले कभी पढ़ा है।'** मन की निर्मलता के लिए अध्ययन और मनन की ऐसी प्यास उतनी ही आवश्यक है, जितनी शरीर के स्वास्थ्य के लिए भोजन और व्यायाम की।

हमें यह तो ज्ञात नहीं है कि मैना की स्कूली शिक्षा किस स्तर तक हुई, किन्तु अपने अनुभव से हम यह कह सकते हैं कि भवितव्यता अच्छी हो, पूर्वजन्मार्जित पुण्य का उदय और स्वाध्याय की लगन हो, तो स्कूल में प्रवेश पाए बिना भी बहुत कुछ सीखा जा सकता है। मैना प्रारंभ से ही प्रतिभा-सम्पन्न थी। बौद्धिक ज्ञानशक्ति की अपेक्षा उसकी अतीन्द्रिय ज्ञानशक्ति तीव्र थी। बौद्धिक ज्ञान से बड़ी-बड़ी उपाधियाँ, पद-पैसा-प्रभुत्व और मान-सम्मान तो मिल सकता है, किन्तु आत्म-वैभव नहीं। जिसकी आन्तरिक चेतना जाग्रत होती है, वही सत्यार्थ का प्रकाश प्राप्त कर अपने मोह, राग-द्वेष आदि से छुटकारा पा सकता है। जिससे आत्मा विशुद्ध हो, वही सच्चा ज्ञान है। मैना के

ज्ञानार्जन की दिशा द्विमुखी थी, वह स्व-पर प्रकाशक थी। पर को जानकर स्व में लीन होते जाने की प्रवृत्ति ने ही मैना से ज्ञानमती होने तक का मार्ग प्रशस्त किया, यह मानने में संदेह के लिए कोई अवकाश नहीं है।

शास्त्रों में ज्ञानी को सम्बुद्ध भी कहा गया है और उसकी तीन कोटियाँ बताई गई हैं—**(1) स्वयंबुद्ध**—जो बिना किसी गुरु के स्वतः ज्ञान प्राप्त करता है **(2) प्रत्येक बुद्ध**—जो किसी निमित्त से ज्ञान प्राप्त करता है तथा **(3) उपदेशबुद्ध**—जो दूसरों के उपदेश से ज्ञान प्राप्त करता है। स्वयंबुद्ध तो तीर्थंकर होते हैं एवं शेष ज्ञानी दूसरी और तीसरी कोटि में गणनीय हैं। ज्ञान तो आत्मा की ज्योति है, वह भीतर से प्रकट होती है। विद्या बाहर की विभूति है, उसे अर्जित किया जाता है। ज्ञान उपादान है और उसकी जागृति में पारिवारिक वातावरण, गुरु, पुस्तक आदि निमित्त हैं। मैना या माताजी का उपादान जाग्रत था, इसलिए अनुकूल निमित्त पाकर और उपदेश सुनकर उनका ज्ञान निरन्तर वृद्धिंगत होता रहा। जिस प्रकार योग्य पाषाण-खण्ड में मूर्ति तो पहले से ही विद्यमान रहती है, एक कुशल कारीगर व्यर्थ के (फालतू) पाषाण-कणों को अपनी पैनी छैनी से काट-छाँटकर अलग कर देता है और मूर्ति प्रकट हो जाती है, उसी प्रकार मैना की उपादान शक्ति में ज्ञान तो पहले से ही मौजूद था, निमित्त-शिल्पी ने क्षयोपशम की छैनी का अवलम्ब पाकर अवरोधक कर्म को पृथक् कर दिया और ज्ञान के बंद स्रोत खुलते चले गये।

➢कैसे हुआ ज्ञान का विकास!

मैना के ज्ञान का विकास उसकी स्वतःस्फूर्त प्रेरणा का परिणाम है। प्रारंभिक शिक्षा यद्यपि उसने किसी धार्मिक पाठशाला में प्राप्त की थी, किन्तु वह युग स्त्री-शिक्षा की उपेक्षा का युग था। उस समय के अभिभावकों की अपनी-अपनी कन्याओं को अधिक पढ़ाने में विशेष रुचि नहीं थी। कस्बे की अन्य कन्याओं की तरह मैना को भी आगे पढ़ाई जारी रखने से रोक लिया गया, किन्तु मनस्वी मैना को किसी वैशाखी की जरूरत ही कहाँ थी! उसने घर पर ही पढ़ना जारी रखा। कभी सीता और राजुल के बारहमासा पढ़ती तो कभी बारहभावना, वैराग्य भावना, ज्ञानपचीसी और स्तुतियाँ आदि। घर में रहते हुए जब गेहूँ-चावल बीनती-शोधती या अन्य काम कर रही होती, तो पाठ भी याद करती रहती। जिसके मन में पढ़ने की ऐसी धुन सवार हो, उसे सम्बुद्ध बनने से रोकने की शक्ति किसमें हैं?

एक चरन हू नित पढ़े तो काटै अज्ञान।
पनिहारी की लेज सों सहज कटै पाषाण।।

आठ वर्ष की उम्र से ही मैना अपनी माँ के साथ नियमित रूप से मंदिर जाने लगी थी। वहाँ बैठकर अन्य लड़कियाँ जहाँ गपशप में लीन रहतीं, वहाँ मैना मनोयोग से शास्त्र-चर्चा सुनती। उसके ज्ञानवर्धन में शास्त्र-श्रवण भी एक बलवान निमित्त रहा।

जब मैना ने दीक्षा ग्रहण कर ली, तो उन्हें पूज्य आचार्य श्री देशभूषण महाराज, आचार्यश्री शान्तिसागर महाराज एवं आचार्यश्री वीरसागर महाराज के उपदेश श्रवण और तत्त्वचर्चा का सौभाग्य मिलने लगा। वहाँ यथावसर वह स्वयं भी पढ़ती और गुरु-आज्ञा से संघस्थ सभी साधुओं और आर्यिकाओं को भी पढ़ाती। प्रत्युत्पन्नमति और अभीक्ष्णज्ञान-साधक तो वह वह थी ही, स्वयं पढ़ने और दूसरों को पढ़ाते रहने से उसकी मति पैनी होती गई। ज्यों-ज्यों ज्ञान का व्यय करते हैं, त्यों-त्यों ज्ञान बढ़ता है। धीरे-धीरे चारों ही अनुयोगों के सभी उच्च कोटि के सिद्धान्त एवं आगम ग्रंथों का तलस्पर्शी पाण्डित्य उसने प्राप्त कर लिया। आज वह वैदुष्य के जिस शिखर पर बैठी है, वहाँ तक पहुँचने में हम जैसे छद्मस्थों और 'पण्डित' नामधारियों को अभी कई जन्म लेने पड़ सकते हैं।

➢वैराग्योन्मुख जीवन : नैसर्गिक विरक्ति

'ज्ञानं तृतीयं पुरुषस्य नेत्रं'-जिसे दोनों चर्मचक्षुओं से देखना संभव नहीं है, उसे तीसरे ज्ञानचक्षु से देखा जा सकता है। भेदज्ञान या विवेक को ही तृतीय नेत्र कहा गया है। प्रकारान्तर से यही सम्यग्ज्ञान है। मैना ने शास्त्र-सभा में पण्डित जी के मुख से सुना था-**'आत्मा में अनन्त शक्ति है।'** यह एक छोटा सा वाक्य ही मैना के हृदय-परिवर्तन या वैराग्योदय में बीज मंत्र बन गया। उस अनन्त शक्ति को प्रकट करने की चाह उसके मन में उत्पन्न हो गई। उसके जीवन-प्रवाह में एक अद्भुत मोड़ आ गया। लौकिक वासनाओं के प्रति विरक्ति का भाव बढ़ने लगा। ज्ञान का फल उपेक्षा या उदासीनता है, आचार्यों की इस देशना का मर्म उसकी समझ में आने लगा। यह एक प्रकार की वैचारिक क्रान्ति थी, जिसका स्फुरण अन्तरंग से हुआ था। जो बदलाव किसी के प्रभाव या दबाव में होता है, वह तो छूट सकता है किन्तु नैसर्गिक विरक्ति में स्थायित्व होता है। ऐसी विरक्ति सम्यग्ज्ञानियों को ही सुलभ होती है।

वही प्राणी वैराग्योन्मुख होता है, जिसे यह ज्ञान है कि कोई भी विषय-वस्तु या व्यक्ति न तो सर्वतः अच्छा होता है और न बुरा। अच्छाई और बुराई का निवास लोगों की दृष्टि में है। कहावत भी है– **'जैसी दृष्टि, वैसी सृष्टि'।** जिसे यह ज्ञान हो जाता है, वह विषयों, पदार्थों या व्यक्तियों के प्रति मोह-ग्रस्त नहीं होता। उदाहरण के लिए लोग दहेज-प्रथा की जमकर बुराई करते हैं, लेकिन दहेज न स्वयं में अच्छा है और न बुरा। यदि सर्वथा बुरा होता तो लड़के वाले उसे चाहते क्यों और यदि सर्वथा अच्छा होता तो लड़की वाले उसे कोसते क्यों? दहेज के प्रति लोगों की समझ या दृष्टि में अन्तर है। एक दहेज तो ऐसा होता है, जो जीव के उद्धार में निमित्त बन जाता है और एक दहेज ऐसा होता है, जिसे पाने के लिए लोग पाप करने में भी नहीं हिचकते। सौभाग्यशाली मोहनीदेवी को उनके पिता (मैना के नाना) ने स्व ससुराल के लिए विदा करते समय एक धर्मग्रंथ **'पद्मनंदिपंचविंशतिका'** दहेज के रूप में अर्पित किया था। उसे पढ़कर मोहनीदेवी ने आगे चलकर आजीवन शीलव्रत एवं अष्टमी-चतुर्दशी को ब्रह्मचर्य का नियम ले लिया था। माँ की प्रेरणा से इसी ग्रंथ के 'शरीराष्टक' अध्याय को पढ़कर मैना का शरीर के प्रति ममत्व-भाव विलीन हो गया था। जिनकी दृष्टि निर्मल होती है, वे दहेज से शुभ का संचय करते हैं और जिनकी दृष्टि मलिन या राग-रंजित होती हैं, वे उससे अशुभ का सम्पादन कर लेते हैं। मोहनी और मैना के कल्याण का साधन बन गया-पिता द्वारा मोहिनी को प्राप्त दहेज। यह दोनों की वैराग्योन्मुख दृष्टि का परिणाम था। रागियों के लिए माँग कर लिया हुआ दहेज (धन-सम्पत्ति और भोग्य सामग्री) हमेशा संसारवर्धक ही होती है। किसी ने ठीक ही कहा है–

चिन्ता न कर उदय की, बन वीतराग।
होगा न बंध तब लौं, जो लौं न राग।।

दृष्टि को निर्मल बनाना ही ज्ञान का फल है। मलिनता आती है राग और द्वेष से। ज्ञान-ध्यान और स्वाध्याय उसी का सार्थक है, जिनकी दृष्टि के विकार क्षीण हो जाते हैं। आचार्य कह रहे हैं-

परं ज्ञानफलं वृत्तं, न विभूतिर्गरीयसी।
तथा हि वर्धते कर्म, सद्वृत्तेन विमुच्यते।।

अर्थात् ज्ञान का उत्कृष्ट फल चारित्र है, प्रचुर विभूति (धन-कन-कंचन आदि) नहीं। बाहरी विभूति से कर्म बँधते हैं और चारित्र से वे नष्ट हो जाते हैं। धन्य हैं वे लोग, जिन्हें ज्ञान का अपच नहीं होता।

➢संयम-पथ पर बढ़ते कदम

प्रायः यह कहा जाता है कि स्त्री कमजोर होती है और पुरुष ताकतवर। राष्ट्रकवि गुप्त ने भी स्त्री को **'अबला'** कहकर सम्बोधित किया है और उसकी कहानी को **'आँचल में दूध और आँखों में पानी'** तक समेट कर रख दिया है। पहले स्त्रियों की दशा थी भी ऐसी ही, किन्तु अब स्थितियाँ बदल रही हैं। एक दार्शनिक से जब इस संदर्भ में पूछा गया तो उसने बड़ा ही सटीक उत्तर दिया। उसने कहा– 'एक दृष्टि से पुरुष ताकतवर है, क्योंकि उसमें मस्कुलर ताकत ज्यादा है। वह ज्यादा बड़ा पत्थर उठा सकता है। एक दृष्टि से स्त्री ज्यादा ताकतवर है, क्योंकि वह ज्यादा पीड़ा झेल सकती है। पुरुष में तर्क करने की क्षमता अधिक है, तो भावना की क्षमता स्त्रियों में अधिक है। वे ज्यादा संवेदनशील होती हैं, ज्यादा प्रेम कर सकती हैं, ज्यादा अनुभूतिपूर्ण हो सकती हैं। भविष्य अब स्त्रियों का उज्ज्वल है, क्योंकि मसल्स का काम तो अब मशीन करने लगी है। पत्थर को क्रेन उठा देती है, लकड़ी को आरा मशीन काट देती है। गुणा-भाग और जोड़-बाकी का काम कैल्कुलेटर बेहतर ढंग से करने लगा है। पुरुष की मसल्स की ताकत धीरे-धीरे बेमानी होती जा रही है, परन्तु प्रेम और संवेदना का काम मशीन नहीं कर सकती है। जिन्दगी की प्रयोगशाला में बुद्धि का उतना महत्व नहीं, जितना हृदय का है। हार्दिकता स्त्रियों में अधिक है, इसलिए उनका भविष्य अच्छा दिखाई दे रहा है।'

आर्यिका ज्ञानमती जी आज इस बढ़ती मातृशक्ति की प्रतीक बन गई हैं। पर-कल्याण आसान है, आत्मकल्याण कठिन है। उसके लिए अधिक साहस जुटाना पड़ता है, अधिक शक्ति लगानी पड़ती है। बचपन से ही वैराग्योन्मुख मैना ने संयम-पथ पर उत्तरोत्तर अपने कदम बढ़ाकर मातृशक्ति को महिमा-मण्डित किया है। गत दो-ढाई दशकों में आर्यिका दीक्षा अंगीकार कर आत्मकल्याण को आतुर स्त्रियों की संख्या तेजी से बढ़ रही है, इसका श्रेय मैना की प्रशस्त पहल को ही दिया जायेगा। इस युग की वह वरिष्ठ आर्यिका हैं।

'संयम-पथ पर क्रमपूर्वक आरोहण करने से पतन का भय नहीं रहता'– अपने परम्परा-गुरु पूज्य आचार्यश्री शान्तिसागर जी महाराज की यह सीख सदैव मैना के ध्यान में रहती थी। स्वाध्याय करते समय छोटी-छोटी बातों का भी उस पर गहरा प्रभाव पड़ता था। एक बार तपे हुए घी में चीटिंयाँ देखकर उसने बाजार के घी का त्याग कर दिया था। बाल्यावस्था में ही शीलकथा

पढ़कर उसने जिनेन्द्र भगवान की साक्षी में शीलव्रत ग्रहण कर लिया था। हर माता-पिता कन्या के सयानी होने पर उसका विवाह करना चाहते हैं, परन्तु मैना ने तो विवाह-बंधन में न फँसने का निश्चय बचपन में ही अकलंक-निकलंक नाटक देखकर कर लिया था। **'मेरी स्मृतियाँ'** में माताजी ने इस प्रसंग का उल्लेख करते हुए लिखा है–

'उस लघु वय में ही एक बार पाठशाला में लड़कों ने 'अकलंक-निकलंक' नाटक खेला था, जिसमें अकलंक और उनके पिता के संवाद में अकलंक ने एक पंक्ति कही-**'प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरं'**। कीचड़ में पैर रखकर धोने की अपेक्षा कीचड़ में पैर नहीं रखना ही अच्छा है, वैसे ही विवाह करके पुनः छोड़कर दीक्षा लेने की अपेक्षा विवाह नहीं करना ही उत्तम है। यह पंक्ति मेरे हृदय में पूर्णतया उतर गई, उसी क्षण से लेकर मैं हमेशा सोचती रहती तथा यह पंक्ति मन में रहा करती।'

रत्नाकर कवि ने ठीक ही लिखा है कि ज्ञान शास्त्रों में नहीं, आत्मा में है, वह व्यक्त होना चाहिए आचरण से। संसार में ऐसे लोग बहुत हैं, जो अनेक शास्त्र पढ़ते हैं। उलटते-पलटते उनके पन्ने जीर्ण हो जाते हैं, किन्तु मन के कोने में छिपी वासना के संस्कार जीर्ण नहीं होते।

मैना पढ़ती ही नहीं थी, मनन भी करती थी और मनन के बाद जो सही जँचता, उसे आचरण में उतार लेती थी। विवाह के लिए उस पर पिता-माता, चाचा-ताऊ आदि ने बहुत जोर डाला, पर वह तो पहले ही अपनी माँ के समक्ष अपने भाव व्यक्त कर चुकी थी– **'मैं कथमपि संसार बंधन में नहीं फँसना चाहती हूँ, मैंने गृह-त्याग का पूर्ण निर्णय कर लिया है। मुझे अपनी आत्मा का कल्याण करना है। यह मनुष्य भव यूँ ही व्यर्थ नहीं खोना है।'** परिजनों ने विचार बदलने और विवाह के लिए सहमत करने के लिए हर तरह से फुसलाया, पर वह अपने इरादे से टस से मस नहीं हुईं।

टिकैतनगर अवध का ही एक भू भाग है, जहाँ अंतिम कुलकर नाभिराय हुए, प्रथम तीर्थंकर आदिप्रभु ने जन्म लिया, उनकी दोनों पुत्रियों ब्राह्मी और सुन्दरी ने संसार-चक्र में फँसना स्वीकार नहीं किया। भव्यात्माओं पर भूमि का प्रभाव तो पड़ता ही है, फिर मैना ही उसके प्रभाव से कैसे अछूती रह पाती!

कन्या के जन्मते ही उसके पिता को कन्या के विवाह की चिन्ता लग जाती है। उसकी मनोदशा का चित्रण करते हुए महाकवि कालिदास ने लिखा है–

जातेति कन्या महतीहि चिन्ता,
कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्कः।
दत्ता सुखं प्राप्स्यति वा नवेति,
कन्या पितृत्वं खलु नाम कष्टः।।

अर्थात्-कन्या के जन्म लेते ही पिता को बड़ी भारी चिंता लग जाती है कि बड़ी होने पर इसका विवाह किसके साथ करेंगे! जिस घर में इसे देंगे, वहाँ यह सुखी रहेगी या नहीं, इस प्रकार का तर्क-वितर्क होने लगता है। कन्या का पिता होना सचमुच कष्ट की बात है।

स्त्री जाति को सदियों से पराधीन बनाकर रखा गया है। उपन्यासकार आनन्दशंकर माघवन ने उसकी पराधीनता पर व्यंग्य करते हुए लिखा था-'स्त्री तो गाय के समान है। जिस प्रकार गाय को उसका मालिक जिस खूँटे पर बांध देता है, उसे उसी खूँटे पर बँधकर रहना पड़ता है, उसी प्रकार की दशा स्त्री की है। वह भी जीवन भर चाहते हुए या न चाहते हुए पति की अनुगामिनी बनी रहने को विवश है।

मैना का इरादा चूँकि आत्मस्वातन्त्र्य-समर का योद्धा बनने का था, इसलिए वह किसी खूँटे से बँधना कैसे स्वीकार कर सकती थी! किसी के हड़काने और फुसलाने में न आकर **'स्त्री-मुक्ति की पुरोधा'** के रूप में उसने इतिहास में अपना नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित करा लिया है। महापुराण में ठीक ही कहा गया है– **'क्रियासिद्धि सत्वे, वसति महतां नोपकरणे'** अर्थात् महान् लोग अपनी दृढ़ता से ही कार्य सिद्ध करते हैं, दूसरों के आश्रय से नहीं। इसी का नाम आत्मस्वातन्त्र्य है।

संयम-पथ की इस बड़ी बाधा के टल जाने पर मैना के कदम तेजी से आगे बढ़ने लगे। पूज्य आर्यिका चंदनामती माताजी (गृहस्थावस्था की उनकी छोटी बहन) के शब्दों में उसके आत्म-विकास की इस यात्रा की कहानी संक्षेप में इस प्रकार है-

'पिता छोटेलाल और माता मोहिनी के मातृत्व को धन्य करने वाली उस 'मैना' नाम की कन्या ने अट्ठारह वर्ष की अल्प आयु में सन् 1952 में अपनी जन्मतिथि शरदपूर्णिमा को भारत-गौरव आचार्यरत्न श्री देशभूषण महाराज से सप्तम प्रतिमा रूप आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण कर घर का त्याग कर दिया। पुनः सन् 1953 में चैत्र कृष्णा एकम् को श्री महावीर जी अतिशय क्षेत्र पर

क्षुल्लिका-दीक्षा ग्रहण कर 'वीरमती' नाम पाया। 'वीरमती' के रूप में उन्होंने तीन चातुर्मास सम्पन्न किए। पुनः चारित्र-चक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर महाराज के आदेशानुसार उनके प्रथम पट्टशिष्य आचार्य श्री वीरसागर महाराज से वैशाख कृष्णा 2 (सन् 1956) को आर्यिका दीक्षा लेकर 'ज्ञानमती' नाम प्राप्त किया।''

आज **'युग की प्रथम बाल सती', 'शिष्याओं की उद्धारिका', 'अनेक मुनियों की शिक्षागुरु', 'अप्रतिम साहित्य-सर्जक', 'कल्याणक भूमियों के विकास की सूत्रधार', 'तीर्थ-प्रहरी'** आदि अनेकानेक विरुदों से ख्याति-प्राप्त गणिनीप्रमुख पूज्य ज्ञानमती की कीर्ति-कौमुदी भारत में ही नही, भारत से बाहर भी फैल चुकी है। पूज्य आचार्य शांतिसागर जी महाराज शिष्याओं पर इनके अनुग्रह और वात्सल्य को देखकर इन्हें **'उत्तर की अम्मा'** कहकर सम्बोधित करते थे। आचार्य वीरसागर जी महाराज के संघस्थ साधुओं को इनके भीतर **'साक्षात् सरस्वती'** के दर्शन होते थे। यथार्थ में पूज्य ज्ञानमती माताजी तो अनुपमेय हैं, उनके गौरव के सामने सभी विशेषण फीके दिखाई देते हैं।

दीक्षा प्रदान करते समय माताजी के दीक्षा गुरु ने उनसे कहा था– **'ज्ञानमती जी! मैंने जो तुम्हारा नाम रखा है, उसका सदैव ध्यान रखना।'** माताजी ने इस गुरु-वचन को मंत्र की तरह ग्रहण किया। वे स्वयं अहर्निशि ज्ञानाराधना में रत रहती हैं और सभी शिष्य और भक्त-समुदाय को निरन्तर ज्ञान का प्रसाद बाँटती रहती हैं। उनकी शिष्याओं में पूज्य आर्यिका जिनमती, आर्यिका पद्मावती (अब समाधिस्थ), आर्यिका आदिमती, आर्यिका श्रुतमती, आर्यिका शिवमती, क्षुल्लिका शांतिमती, श्रद्धामती आदि अनेक ऐसे नाम हैं, जो उनसे ज्ञान और वात्सल्य पाकर स्वयं को कृतकृत्य मानती हैं, बड़ी श्रद्धा से इनके उपकारों का स्मरण करती हैं।

किसी मनीषी ने कहा है कि **अच्छाई और बुराई दोनों ही संक्रामक होती हैं।** घर में एक सुलट जाए तो सब सुलट जाते हैं और एक बिगड़ जाए तो सब बिगड़ जाते हैं। ये दोनों नींद की तरह छूत की बीमारी हैं। एक को सोते देख दूसरा भी ऊँघने लगता है। मैना छोटेलाल जी के परिवार की सबसे बड़ी कन्या थी। वह सन्मार्ग पर चल पड़ीं तो परिवार के अन्य कई सदस्यों ने भी उनका अनुगमन किया। उनकी दो छोटी बहनें आज आर्यिका अभयमती और आर्यिका चंदनामती हैं। भाई रवीन्द्र भी बालयोगी बन संघ की सेवा में दिन-रात

समर्पित होकर कार्य करते हैं। उनकी **'कर्मयोगी'** की उपाधि सार्थक ही है। कु. आस्था शास्त्री, कु. बीना शास्त्री, कु. सारिका एवं कु. इन्दू जैन भी संघ में रहकर श्रावकोचित्त प्रतिमा और व्रतादि का पालन कर रही हैं, और तो और इनसे प्रेरणा पाकर इनकी जन्मदात्री माँ मोहिनी ने भी आचार्य धर्मसागर जी से आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर **'रत्नमती'** नाम प्राप्त कर कुल का गौरव बढ़ाया था। संयम का यह कैसा चमत्कार है कि उसके प्रभाव से माँ अपनी पूर्व पर्याय की पूर्व दीक्षित बेटी को अपनी माँ मान लेती है और बेटी के चारित्र को देखकर एक दिन स्वयं भी जगन्माता बनने का मार्ग स्वीकार कर लेती है। सच तो यह है कि पूज्य ज्ञानमती माताजी ने अपनी शिष्याओं पर अपना पूरा प्रशस्त स्नेह उड़ेलकर या तो उन्हें अपने समान बना लिया है या अपने समान बनने के मार्ग पर अग्रसर कर दिया है। उनके बारे में कोई भी भविष्य में यह नहीं कह सकेगा– **'जो अधीन को आप समान, करे न सो निन्दित धनवान'।**

पूज्य माताजी शास्त्र-निर्देशित समयानुसार सामायिक, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण आदि क्रियाओं में सदा संलग्न रहती हैं तथा दोष-परिहार में सदा सावधान भी।

➢अप्रतिम साहित्य-सर्जक

'हमारे ही बीच हैं वे, जो धर्मशाला बनाते हैं और हमारे ही बीच हैं वे, जो मंदिरों का निर्माण करते हैं, पर क्या किसी एक ग्रंथ का निर्माण धर्मशाला और मंदिर के निर्माण से कम पवित्र है?'

–कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

प्रभाकर जी तो एक ग्रंथ के निर्माण को इतना पवित्र बता रहे हैं, जबकि माताजी ने तो ढ़ाई सौ से अधिक ग्रंथ और बीसियों मंदिर बनवाए हैं। अब पाठकवृंद ही यह निर्णय करें कि उन्होंने कितने पुण्य का संचय किया होगा!

साहित्य-सृजन एक उत्कृष्ट तप एवं पवित्र अनुष्ठान है। सिद्धान्त-महोदधि पं. माणिकचंद जी 'कौन्देय' न्याययाचार्य जब आचार्य विद्यानंद के वज्रोपम ग्रंथ 'श्लोकवार्तिक' की टीका लिख रहे थे तो अत्यधिक श्रम से वह कई बार रुग्ण हो जाते, सिर भारी हो जाता, ऐसे चक्कर आते कि उन्हें लगता कि कहीं मृत्यु न हो जाए। महीनों के उपचार के बाद स्वस्थ हो पाते थे। माताजी के साथ भी कई बार ऐसी ही स्थितियाँ आई हैं। वह भी मृत्यु के मुख तक जाते-जाते लौट आई हैं। 'सागारधर्मामृत' में जिन भगवान और जिनवाणी की सेवा

में कुछ भी अन्तर नहीं बताया है। श्रुतधर आचार्यों की यह जिन और जिनवाणी की भक्ति ही असाध्य को साध्य बनाने का कार्य करती रही है। कहा भी है– **'जिनभक्तिः किं न साधयेत्'!**

पूज्य माताजी की प्रतिभा बहुमुखी है। दर्शन, धर्म, अध्यात्म, न्याय, गणित, भूगोल, खगोल, नीति, इतिहास, कर्मकाण्ड आदि विषयों पर उनका समान अधिकार है। साहित्य की विविध शैलियों, जैसे-गद्य, पद्य, नाटक, कहानी, उपन्यास, संस्मरण, आत्मकथा, समीक्षा आदि सभी विधाओं में उन्होंने ग्रंथ लिखे हैं। एक ओर तो उन्होंने कोमलमति बालकों को संस्कारित करने के लिए सरल भाषा में पाठ्यपुस्तकें तैयार की हैं, तो दूसरी ओर प्राचीनतम साहित्य षट्खण्डागम, अष्टसहस्री, नियमसार, समयसार आदि की गुरु गंभीर टीकाएँ भी की हैं। उनके द्वारा लिखित सम्पूर्ण साहित्य का परिचय तो दूर, नामोल्लेख करना भी इस छोटे से आलेख में संभव नहीं है, फिर भी उनकी रचनाओं में जैन भारती, ज्ञानामृत, कातंत्रव्याकरण, त्रिलोक भास्कर, प्रवचन-निर्देशिका, मेरी स्मृतियाँ आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेख्य हैं। प्रतिज्ञा, संस्कार, भक्ति, आदिब्रह्मा, आटे का मुर्गा, जीवनदान आदि कृतियाँ भी जनसामान्य में लोकप्रिय सिद्ध हुई हैं। उनकी प्रत्येक कृति के पन्ने-पन्ने से उनके गहन वैदुष्य की झलक मिलती है।

चौबीस घंटों में एक बार आहार-पानी लेने वाले ये सन्त हिमगिरी-तुल्य इतना विराट् लेखन-कार्य कैसे कर लेते हैं, यह सोचकर ही आश्चर्य होता है। ऐसा ही प्रश्न एक साहित्य-महारथी सन्त से एक बार हमने किया था- 'महाराज! आप एक बार आहार लेकर इतने विपुल साहित्य की रचना कर लेते हो, हम दिन में कई बार खाने वाले पूरे जीवन में उसकी नकल भी नहीं कर सकते, इसके पीछे कारण क्या है?' सन्त ने हमें निरुत्तर करते हुए उत्तर दिया-'जो खाने में ही लगा रहता है, उसके पास लिखने के लिए समय ही कहाँ बचता है? एक ही कार्य हो सकता है, या तो खा लो या लिख लो।' बात हँसी की है, पर इसमें तथ्य है।

हिन्दी-संस्कृत भाषा और उसके व्याकरण पर माताजी का असाधारण अधिकार है। चारों ही अनुयोगों से संबंधित साहित्य उन्होंने लिखा है। विधान या पूजा-साहित्य की रचना करने वाली वह इस समय की एक मात्र साध्वी हैं। उन्होंने इन्द्रध्वज, कल्पद्रुम, तीन लोक, सर्वतोभद्र आदि अनेक विधानों की

सरस छंदों में रचना की है। पूरे देश में आज पूज्य माताजी द्वारा रचित इन्हीं विधानों के आधार पर अनुष्ठान सम्पन्न हो रहे हैं। इनमें से कुछ विधानों के नाम शास्त्रों में मिलते थे, पर वे सुलभ नहीं थे। माताजी के इस पुरुषार्थ से एक बड़े अभाव की पूर्ति हुई है। वह छंद शास्त्र में भी निष्णात हैं, इन विधानों से यह बात आइने की तरह स्पष्ट हुई है।

साहित्य और काव्य-रचना वही प्रशस्त और प्रशंसनीय मानी गई है, जो कल्याणकारक और सोद्देश्य हो तथा आत्मा को चैतन्य की जगमगाहट से प्रदीप्त करने वाली भी हो। माताजी ने संशय, विपर्यय और अध्यवसाय-रहित जैन साहित्य को जन साहित्य के रूप में प्रस्तुत करने का प्रबल पुरुषार्थ किया है। हमारे आचार्यों ने उन्हीं कवियों या रचनाकारों की प्रशंसा की है, जो धर्मकथा की रचना करते हैं। इसी भाव को व्यक्त करने वाली गाथा है–

त एव कवियो लोके त एव च विचक्षणः।
येषां धर्मकथाङ्गत्वं भारती प्रतिपद्यते ।।

पूज्य माताजी का समग्र साहित्य भव्य जीवों को समीचीन बोध प्रदान करने वाला है, इसमें कोई संदेह नहीं। उनका सृजन उनकी कीर्ति को 'यावच्चन्द्र दिवाकरौ' जीवन्त बनाए रखेगा। मशहूर शायर 'जौक' साहब ने क्या खूब फरमाया है–

रहता सखुन से नाम कयामत तलक ए जौक।
औलाद से तो यही दो पुश्त चार पुश्त ।।

माताजी के साहित्य की कुछ विशेषताओं का उल्लेख हम अवश्य करना चाहेंगे

* 'वह जो भी लिखती हैं-आगम के उद्धरण देकर लिखती हैं। इससे कथन की प्रामाणिकता पर उँगली उठाने का प्रसंग उपस्थित नहीं होता। (माताजी की धारणा शक्ति बड़ी प्रबल है। उद्धरण प्रस्तुत करते समय उन्हें किसी ग्रंथ के पन्ने नहीं उलटने पड़ते। किसी ने ठीक ही कहा है– **'यस्य धृतिः स विद्वान्')।**

* विषय से हटकर कुछ स्वतंत्र रूप से यदि कहना चाहती हैं तो उसे फुटनोट में देती हैं।

* सैद्धान्तिक ग्रंथों का प्रूफ स्वयं देखती हैं, ताकि कोई अशुद्धि न रह जाए।

सभी विद्वज्जनों के लिए ये तीनों ही सावधानियाँ अनुकरणीय हैं।

➢जन्मभूमियों के विकास का अभियान

अतिशय क्षेत्रों पर पैसा बरसता है, किन्तु कल्याणक क्षेत्र प्रायः उपेक्षित हैं। कुछ क्षेत्रों की स्थिति तो इतनी दयनीय है कि वहाँ यदि कभी कोई यात्री रात्रि-विश्राम करना चाहे तो एक कमरा तक टिकने के लिए नहीं है। इस दुर्दशा पर रोना आता है।

यूँ तो अतिशय क्षेत्रों का भी महत्व है। हर मंदिर ही समवसरण का प्रतिरूप है। उसकी समुचित व्यवस्था होनी ही चाहिए, किन्तु इसका यह अर्थ तो नहीं है कि जिस पावन भूमि में तीर्थंकरों और चरमशरीरियों ने जन्म लिया, साधना की, निर्वाण प्राप्त किया तथा जिनके पुण्य-योग से वहाँ बड़े-बड़े महोत्सव हुए, उस पावन भूमि की हम उपेक्षा कर दें। यह ठीक है कि इस युग में लोग चमत्कार को नमस्कार करते हैं। अतिशय क्षेत्रों पर पूजा-पाठ करने से लौकिक मनौतियाँ पूरी होने की आशा रहती है, इसीलिए हमारे दान की धारा का प्रवाह आज उसी दिशा में बह रहा है। हमें यहाँ यह तो अवश्य सोचना चाहिए कि शलाका पुरुषों की साधनाभूमियों पर माथा टेकने से भले ही लौकिक इच्छाएँ-सन्तान का लाभ, धनवृद्धि, मुकदमें यें जीत आदि पूरी न होती हों, परन्तु अद्‌भुत आध्यात्मिक लाभ तो प्राप्त होता ही है। ऐसा भी नहीं है कि कल्याणक आदि क्षेत्रों की उपासना से लौकिक लाभ प्राप्त ही नहीं होता हो। निष्काम भक्ति से प्रशस्त पुण्य का जो संचय होता है, उससे अशुभोदयजनित बाधाएं स्वतः दूर होती हैं। धान के साथ भूसा तो स्वतः ही मिलता है, पर हमें धान से ज्यादा भूसे की चिन्ता लगी रहती है।

तीर्थंकरों और ऋषि-मुनियों की तपस्या के प्रभाव से उनकी साधनाभूमियों में भी अतिशय प्रकट होता है। तपःपूत भूमियाँ भी प्रतापी मनुष्यों की तरह गौरव को प्राप्त हो जाती हैं। राजा विक्रमादित्य जिस सिंहासन पर बैठकर न्याय करता था, युग बीतने पर वह मिट्टी के ढेर में दब गया। मिट्टी के उस ढेर या टीले पर भेड़ें चराने वाले गडरिया का एक निरक्षर बेटा जब बैठता तो ज्ञान की बातें करने लगता। बड़े-बड़े झगड़ों का बुद्धिपूर्वक निपटारा कर देता। टीले से उतरते ही उसका ज्ञान छूमन्तर हो जाता था। चाँदनपुर में एक टीले के नीचे दबी भगवान महावीर की मूर्ति के प्रभाव से एक गाय के थनों से दूध आपोंआप झरने लगता था। होनहार तीर्थंकर की माता दिक्कुमारियों के जटिल से

जटिल प्रश्नों का सटीक समाधान करती थीं। क्या उसके पास किसी विश्वविद्यालय की बड़ी उपाधि होती है? नहीं, सातिशय पुण्यात्मा बालक के गर्भ में स्थित होने से उसकी बुद्धि अत्यन्त निर्मल हो जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जड़ पदार्थ हो या चेतन व्यक्ति, शुभ परमाणुओं का प्रभाव सब पर अंकित होता है और निमित्त पाकर वह अनुभव में भी आता ही है।

कल्याणक भूमियों में भी अचिन्त्य प्रभाव अंकित है। वहाँ की श्रद्धापूर्वक वंदना करने से जीव को अलौकिक लाभ प्राप्त होता है। उनकी उपेक्षा नहीं होनी चाहिए।

श्रीमन्तों के द्वारा अपनी दान की धारा को सम्यक् दिशा में मोड़ा जाना समय की माँग है। जहाँ सबसे अधिक आवश्यकता हो, वहाँ दान देने से अधिक पुण्य-लाभ प्राप्त होता है। श्रीकृष्ण ने कहा है– **'व्याधितस्यौषधं पथ्यं, नीरुजस्य किमौषधम्'** अर्थात् दवा की आवश्यकता रोगी को है, स्वस्थ व्यक्ति को नहीं। दीपक की शोभा रात्रि में है, दिन में नहीं। समुद्र पर वर्षा से क्या लाभ है? आज आर्थिक सहयोग की सबसे अधिक आवश्यकता कल्याणक क्षेत्रों को है, यह हमें समझना चाहिए।

पूज्य ज्ञानमती माताजी के मन में कल्याणक भूमियों की उपेक्षा को देखकर एक टीस सी उठती थी। उन्हें ऐसा लगता कि ये उपेक्षित भूमियाँ अपने उद्धार और विकास के लिए उनकी ओर आशाभरी आँखों से निहार रही हैं। वे जहाँ भी जातीं, इन भूमियों के विकास के लिए प्रेरणा देतीं। किसी ने कहा है कि योजना-शिल्पियों के सपने कभी अपूर्ण नहीं रहते। आँखों में यदि अरमान हों तो आशियाना दूर नहीं तथा पाँखों में यदि उड़ान हो तो आसमां दूर नहीं। दृढ़ संकल्पी लोगों के सपने अवश्य साकार होते हैं। माताजी के सच्चे हृदय की तड़प ने भी रंगत दिखाना शुरू किया। इस विकास-अभियान का पहला केन्द्र बनी भगवान शांति-कुंथु-अरहनाथ की पौराणिक-ऐतिहासिक महत्व की पावन कल्याणक भूमि हस्तिनापुर।

पूज्य माताजी की प्रशस्त प्रेरणा से यहाँ **जम्बूद्वीप** की रचना हुई, जो अद्वितीय बन पड़ी है। अब तक इसका वर्णन केवल शास्त्रों में पढ़ने को मिलता था। सुमेरु पर्वत को हम केवल तस्वीरों या रेखाचित्रों में देखते थे। अब उसकी हूबहू प्रतिकृति यहाँ देख सकते हैं। इस भव्य रचना ने जैन भूगोल को समझना अब सबके लिए आसान कर दिया है। इसके विस्तृत परिसर में अन्य

अनेक मंदिरों का भी निर्माण हुआ है। इसकी रमणीयता को देखकर सैलानी अब इसे **'धरती का स्वर्ग'** कहने लगे हैं।

पिछले वर्षों में अयोध्या का भी अच्छा विकास हुआ है। वहाँ कई नए निर्माण हुए हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह हुई है कि सरयू-तट पर स्थित राष्ट्रीय पार्क में भगवान आदिनाथ की विशाल प्रतिमा स्थापित की गई है। त्रिकालवर्ती तीर्थंकरों की सनातन जन्मभूमि को देश-विदेश के लोग भी अब जैन नगरी के रूप में स्वीकार करने लगे हैं। प्रथम तीर्थंकर की मूर्ति-स्थापना के कारण जैनधर्म की प्राचीनता को भी मान्यता मिली है।

इलाहाबाद या प्रयागराज भगवान आदिनाथ की दीक्षा एवं ज्ञान कल्याणक भूमि है, लेकिन लोग उसे भूलते जा रहे थे। अब वहाँ भी एक नया तीर्थ 'भगवान ऋषभदेव तपस्थली' के नाम से विकसित हो चुका है। नेशनल हाईवे पर अवस्थित होने से वह सभी को आकर्षित करता है। प्रतिदिन आने-जाने वालों का तांता लगा रहता है।

भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर का दो वर्ष की अल्पावधि में जिस त्वरित गति से विकास हुआ है, वह सभी जैन-अजैन को आश्चर्यचकित करता है। जो स्थान पहले सुनसान दिखाई पड़ता था, वहाँ अब बारहों महीने खूब चहल-पहल रहती है।

तीर्थराज सम्मेदशिखर जी, पावापुरी, गुणावां आदि में भी नई मूर्तियाँ स्थापित हुई हैं। भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी में पुराने जीर्ण मंदिर की जगह नया भव्य मंदिर बनने जा रहा है। श्रावस्ती, प्रभासगिरि, सनावद आदि अनेक स्थानों पर भी विकास कार्य हुए हैं, या हो रहे हैं। राजगृही में भगवान मुनिसुव्रतनाथ की बड़ी प्रतिमा स्थापित हुई है। लोग तो भूल ही गए थे कि वह उनकी जन्मभूमि है।

दक्षिण के सम्मेदशिखर मांगीतुंगी में शिखर पर भगवान आदिनाथ की 108 फुट की प्रतिमा पर कार्य चल रहा है। बनने पर निःसंदेह यह पावन क्षेत्र विश्व-धरोहर के रूप में गणनीय होगा। भूतल पर भी काफी कायाकल्प हुआ है। जहाँ-जहाँ माताजी का विहार होता है, वहाँ नए निर्माण और विकास कार्य हो रहे हैं।

यों तो इन सभी क्षेत्रों का विकास राज-मजदूरों ने किया है, किन्तु उनकी असली शिल्पकार तो माताजी हैं। कर्मयोगी भाई जी (ब्र. रवीन्द्रकुमार) एवं

पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागर जी ने छाया की तरह माताजी के साथ रहकर उनके इन स्वप्नों को साकार किया है।

यह अनुभव की बात है कि इन स्थानों के बारे में पढ़कर उतना समझ में नहीं आएगा, जितना आँखों से देखकर आ सकता है।

रथ-प्रवर्तनों एवं शिक्षण शिवरों के माध्यम से पूरे देश में ज्ञान का अलख जगाने का जो गुरुतर कार्य हुआ है, वह बेमिसाल है। सेमिनारों का स्तर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय रहा है। एक व्यक्ति के पुण्य-प्रताप से कितना कार्य हो सकता है इसका ठीक-ठीक आकलन करना भी किसी एक के लिए संभव नहीं है।

'श्रेयांसि बहु विघ्नानि' के अनुसार कार्य सम्पादन में अड़ंगे डालने की कोशिशें भी कम नहीं हुईं, किन्तु मजबूत इरादों, समर्पित टीम और तप के प्रभाव से विघ्न-सन्तोषियों की सारी कोशिशें विफल रही हैं।

माताजी के संघस्थ शिष्यगण तो विरोध से कभी-कभी उदास भी हो जाते, किन्तु माताजी उन्हें सदैव हिम्मत बँधाती और यही कहतीं कि **'लोग तो जो कहना है, कहते ही रहेंगे, आप लोग तो धर्म-प्रभावना की योजना को आगे बढ़ाने में लगे रहें'।** उनकी इसी कर्मठता की शिक्षा के कारण ही तो उनके शिष्य ब्र. रवीन्द्र भाई जी को शास्त्री परिषद ने 'कर्मयोगी' की पदवी से अलंकृत किया था।

पूज्य माताजी की बात तो दूर, उनके शिष्य-शिष्याओं को भी हताश होते हुए कभी नहीं देखा गया। विरोध में भी विचलित न होना उनका स्वभाव है। वह प्रायः कहती हैं– **'मेरा ऐसा स्वभाव है कि बात आगमानुकूल हो, मन को जँच जाए और जम जाए, तो उसे पूरा करना ही करना। जो अपनी विचारधारा से सहमत हों, उनसे सहयोग लेना और जो असहमत हों, उन्हें गौण कर देना।'**

उनके इस सकारात्मक सोच में ही उनकी सफलता का रहस्य निहित है।

कल्याणक भूमियों, विशेषतः जन्मभूमियों के विकास में उनकी अत्यधिक रुचि रहती है। उनका कहना है कि हमारी संस्कृति का परिचय प्रदान करने वालीं ये भूमियाँ हमारी महान् संस्कृति की जीवन्त स्मारक हैं। इनका संरक्षण-संवर्धन और विकास अवश्य ही होना चाहिए।

➢ज्ञान-कल्पतरु

पूज्य माताजी इस युग की ज्ञान-कल्पतरु हैं, यह बात तो वे भी खुले दिल से स्वीकार करते हैं, जो कुछ प्रसंगों पर उनसे असहमति रखते हैं।

असहमति या मतभेदों का होना तो बाप-बेटों में भी संभव है, किन्तु मनभेद नहीं होना चाहिए। मनभेद से विवाद और विवाद से विरोध उत्पन्न होते है। समय की माँग यह है कि हम विवादों को मिटाकर संवाद उत्पन्न करें। बीसपंथ, कुण्डलपुर या चर्यासंबंधी कुछ प्रसंग ऐसे नहीं हैं, जिन्हें लेकर मन में कषाय की गाँठ बाँध ली जाये। कषाय हेय है, उससे बचना चाहिए।

कोई किसी से नाराज भी हो तो भी उसे तब तक छोटी-छोटी बातों को तूल नहीं देना चाहिए, जब तक कोई उसके रास्ते के बीच में नहीं आता हो। किसी नीतिज्ञ ने कहा है कि तुम्हें अपनी चिलम सुलगानी हो तो सुलगाओ, तुम्हें रोक कौन रहा है परन्तु अपनी चिलम सुलगाने के लिए दूसरों की झोंपड़ी तो मत जलाओ। विरोध और विवाद की स्थिति में तर्कबुद्धि मुखर हो उठती है, किन्तु हर जगह तर्क और शंका की उँगली पकड़कर चलने से तो आदमी नास्तिक बन जाता है।

ज्ञान-कल्पतरु की छाया में बैठकर यही तो सीखने की बात है कि विरोध में भी विनोद की बेल मुरझाने न पाए। एक ज्ञानी व्यक्ति से दूसरा ज्ञानी व्यक्ति ईर्ष्या करता था, बार-बार वह पहले व्यक्ति से विवाद करने लगता, कभी-कभी खूब खरी-खोटी सुनाता। एक सन्त ने उसे बुलाकर समझाया–

जाति न पूछो काउ की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, छोड़ दीजिए म्यान।।

मनुष्य सृष्टि का सर्वोत्तम प्राणी है। उसकी श्रेष्ठता तन से नहीं, मन से आँकी जाती है। तन की अपेक्षा तो पशु उससे श्रेष्ठ हैं। वृषभस्कन्ध, गृद्धदृष्टि, सिंहनाद, अश्वगति जैसे शब्दों से तो यही आभास होता है। मनुष्य की विशेषता उसके विकसित मन और मस्तिष्क की वजह से है। मनीषियों ने उसे **'हिरण्यमय कोष'** इसीलिए तो कहा है। विकसित मन-मस्तिष्क में छिपी रहती है एक चिन्तनशील चेतना, जो अन्य प्राणियों में नहीं पाई जाती। चिड़ियाँ दाना चुगकर अपना पेट तो भर लेती हैं, किन्तु रोटी बनाना नहीं सीख पातीं। बन्दर पेड़ों की डालियों को पकड़कर उछलना-कूदना और लटकना तो जानता है, पर अपने रहने के लिए छोटा-सा घर बनाना नहीं सीख पाता। पशुओं के सामने कोई लक्ष्य या उद्देश्य नहीं रहता, किन्तु मनुष्य की हर योजना सुविचारित होती है। **'ज्ञानोहितेषामधिको विशेषः'** वाली बात है।

पूज्य माताजी की आर्यिका दीक्षा की स्वर्ण जयंती के पावन अवसर पर

हमें यह संकल्प लेना चाहिए कि हम अपनी विवेक-शक्ति को सतत जागृत रखें। विवेक जीवन को प्रकाश से भर देता है। सारी अच्छाइयाँ ही जीवन का प्रकाश है। दोष-दर्शन से बड़ी बुराई कोई नहीं है। हमेशा एक सूत्र-वाक्य याद रखें–

'अपना लोटा छानो, दुनियाभर के नदी-कुओं को आप नहीं छान सकते हैं।'

सद्विचार एवं सत्कर्म ही मनुष्य को ऊँचा उठाते हैं, आगे बढ़ाते और ऊर्ध्वगामी बनाते हैं। ऊर्ध्वारोहण से वंचित जीवन अध्यात्म की दृष्टि से एक निष्क्रिय जीवन है और ऐसी निष्क्रियता अभिशाप है। जैनधर्म व्यक्तिपूजा पर नहीं, गुण-पूजा पर जोर देता है। हम गुणग्राही बनें और अपने जीवन को ऊँचा उठायें।

स्वर्ण दीक्षा जयंती के इस पावन अवसर पर इस ज्ञान-कल्पतरु की छाया में बैठकर अपन तो रोज यही गुनगुनायें–

प्रतिपद्य कदा दीक्षां विहरष्याम मेदिनीम्।
क्षपयित्वा कदा कर्म प्रपत्स्ये सिद्धसंश्रयम्।।

मैं दीक्षा लेकर पृथिवी पर कब विहार करूँगा, कब कर्मों को नष्ट कर सिद्ध परमेष्ठी के आश्रय मोक्ष को प्राप्त करूँगा।

माताजी सदा जयवन्त रहें। यही आशीर्वाद दें कि ज्ञान-कल्पतरु की छाया से हम कभी वंचित न हों। हमारी तो एक ही चाह है–

'खुश रहना, खुश रखना, जीना और जिलाना।
माँ! मेरे जीवन का यही एक हो गाना।।'

गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित विपुल साहित्य : एक दृष्टि में

प्रथमानुयोग

(उपन्यास/बाल साहित्य)

प्रकाशित ग्रंथ

1. मेरी स्मृतियाँ
2. भगवान ऋषभदेव का समवसरण (अंग्रेजी में अनुवादित)
3. तीर्थंकर ऋषभदेव के दश अवतार
4. भगवान महावीर कैसे बने
5. चौबीस तीर्थंकर
6. भगवान बाहुबली
7. भगवान ऋषभदेव
8. भगवान नेमिनाथ
9. अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर
10. भगवान पार्श्वनाथ
11. भगवान महावीर
12. श्री ऋषभदेव जन्मभूमि अयोध्या
13. जैनधर्म एवं भगवान ऋषभदेव
14. तीर्थंकर जीवन दर्शन
15. तीर्थंकर महावीर और धर्मतीर्थ
16. बाल विकास (भाग-1)
17. बाल विकास (भाग-2)
18. बाल विकास (भाग-3)
19. बाल विकास (भाग-4)
20. जैन बाल भारती (भाग-1)
21. जैन बाल भारती (भाग-2)
22. जैन बाल भारती (भाग-3)
23. नारी आलोक (भाग-1)
24. नारी आलोक (भाग-2)
25. भरत बाहुबली (चित्र कथा)
26. ऐतिहासिक तीर्थ हस्तिनापुर
27. जम्बूद्वीप गाइड
28. संस्कार
29. आटे का मुर्गा
30. जीवनदान
31. उपकार
32. परीक्षा
33. प्रतिज्ञा
34. भक्ति
35. प्रभावना
36. योग चक्रेश्वर बाहुबली
37. कामदेव बाहुबली
38. आदिब्रह्मा
39. पतिव्रता
40. एकांकी प्रथम भाग
41. एकांकी द्वितीय भाग
42. सती अंजना
43. जैन महाभारत
44. भरत का भारत
45. रोहिणी नाटक
46. बाहुबली नाटक
47. पुरुदेव नाटक

अप्रकाशित ग्रंथ

48. ऐतिहासिक आर्यिकाएं
49. रोहिणी कथा
50. बोध कथाएं
51. तीर्थंकर महावीर की शासन परम्परा
52. प्राचीन दिगबर जैन साधु
53. प्राचीन आर्यिकाएँ

करणानुयोग

(सिद्धान्त ग्रंथ)

प्रकाशित ग्रंथ

54. षट्खण्डागम (सिद्धान्त-चिंतामणि टीका समन्वितः) खण्ड 1, पुस्तक 1
55. षट्खण्डागम (सिद्धान्त-चिंतामणि टीका समन्वितः) खण्ड 1, पुस्तक 2
56. त्रिलोक भास्कर
57. गोम्मटसार जीवकांडसार
58. गोम्मटसार कर्मकाण्डसार
59. भावत्रिभंगी
60. जैन भूगोल
61. चर्चा शतक
62. ज्ञानज्योति गाइड
63. हस्तिनापुर
64. जम्बूद्वीप

अप्रकाशित ग्रंथ

65. आस्रवत्रिभंगी
66. त्रिलोक विज्ञान
67. आर्यखंड व्यवस्था-अलौकिक गणित
68. मानव लोक
69. गति-आगति-जीव के स्वतत्त्व
70. जैनदर्शन में निमित्त-उपादान
71. सम्यग्दर्शन

चरणानुयोग

(पूजा/विधान/साहित्य)

प्रकाशित ग्रंथ

72. मूलाचार पूर्वार्ध
73. मूलाचार उत्तरार्ध
74. मुनिचर्या
75. आराधना (अपरनाम-श्रमणचर्या)
76. जिनस्तोत्र संग्रह
77. कल्याणकल्पतरु स्तोत्र
78. सामायिक एवं श्रावक प्रतिक्रमण
79. आर्यिका
80. शिक्षण पद्धति
81. रत्नकरण्ड श्रावकाचार
82. सोलह भावना
83. जिनसहस्रनाम मंत्र
84. सामायिक
85. सामायिक पाठ (देववंदना)
86. कुन्दकुन्द का भक्तिराग
87. दशधर्म
88. दिगम्बर मुनि
89. आत्मा की खोज
90. धरती के देवता
91. इन्द्रध्वज विधान
92. कल्पद्रुम विधान

93. सर्वतोभद्र विधान
94. तीन लोक विधान
95. त्रैलोक्य विधान
(लघु तीन लोक विधान)
96. श्री सिद्धचक्र विधान
97. नंदीश्वर विधान
98. विश्वशांति महावीर विधान
99. जम्बूद्वीप विधान
100. श्री पंचकल्याणक विधान
101. चौंसठ ऋद्धि विधान
102. श्रुतस्कंध विधान
103. पंचपरमेष्ठी विधान
104. सहस्रनाम विधान
105. बीस तीर्थंकर विधान
106. चौबीस तीर्थंकर विधान
107. यागमण्डल विधान
108. पंचमेरु विधान
109. जम्बूद्वीप पुष्पांजलि
110. शांति विधान
111. ऋषिमंडल विधान
112. समवसरण विधान
113. जम्बूद्वीप पूजन विधान
114. सुदर्शन मेरु पूजा
115. श्री ऋषभदेव विधान
116. श्री नेमिनाथ विधान
117. मनोकामना सिद्धि भगवान महावीर व्रत एवं महावीर पूजा
118. श्री वीरगुणसंपद् विधान
119. महावीर समवसरण विधान
120. जिनगुण संपत्ति विधान
121. श्री पार्श्वनाथ विधान
122. तीस चौबीसी विधान
123. विषापहार विधान
124. भगवान बाहुबली विधान
125. आचार्य श्री शांतिसागर विधान
126. आचार्य श्री वीरसागर विधान
127. अयोध्या तीर्थक्षेत्र पूजा
128. अहिच्छत्र पूजा संग्रह
129. दशलक्षण धर्म पूजा
130. दीपावली पूजन
131. सम्मेदशिखर टोंक पूजन
132. मण्डल विधान प्रारंभ एवं हवन विधि
133. हस्तिनापुर पूजा
134. जम्बूद्वीप पूजा एवं भक्ति
135. श्री ऋषभदेव पूजा
136. बाहुबली स्तोत्र एवं पूजा
137. बाहुबली पूजा
138. अभिषेक एवं पूजा
139. तीर्थंकर त्रय पूजा
140. नित्य पूजा
141. श्री जिनसहस्रनाम व्रत विधि व पूजा
142. व्रत विधि एवं पूजा
143. व्रत विधि सुमनावलिः
144. जिनस्तवन माला
145. श्री वीरजिन स्तुति
146. बाहुबली स्तोत्र (कन्नड़ भाषा में)
147. बाहुबली स्तुति (कन्नड़ में)

148. प्रयाग तीर्थ वंदना
149. भक्ति पल्लवी
150. वन्दना सुमनावलिः
151. भक्ति कुसुमावली
152. भक्तिसुधा

अप्रकाशित ग्रंथ

153. मुनिसुव्रतनाथ विधान
154. मध्यलोक विधान
155. तीन चौबीसी विधान
156. 720 तीर्थंकर विधान
157. सरस्वती विधान
158. पात्रकेसरी स्तोत्र
159. मूलाचार का सार
160. षट्आवश्यक क्रिया
161. नवदेवता विधान
162. बीस तीर्थंकर विधान
163. आगम दर्पण
164. गणधरवलय मंत्र (अर्थ सहित)
165. सप्त परमस्थान
166. व्रतविधि एवं पूजा (भाग-2)
167. गृहस्थ धर्म
168. जैनदर्शन
169. दिव्यध्वनि
170. णमोकार महामंत्र-एक अध्ययन
171. गृहस्थ धर्म
172. सम्यक्त्व-बोध-चारित्र प्राभृतसार
173. सुदं मे आउस्संतो!
174. द्वादशांग श्रुतज्ञान का विषय
175. त्रैलोक्य जिनालय व्रत
176. मध्यलोक जिनालय व्रत
177. जंबूद्वीप व्रत
178. पार्श्वनाथ व्रत
179. चारित्रलब्धि व्रत
180. तीस चौबीसी व्रत
181. पुण्यास्रव व्रत
182. चौंसठ ऋद्धि व्रत-गणधरवलय व्रत
183. तीन चौबीसी व्रत
184. पंचकल्याणक
185. चतुर्विंशति तीर्थंकर विधान
186. पंचमकाल के अंत तक चतुर्विध संघ
187. जैन ग्रंथों के अध्ययन का क्रम
188. मुनि दीक्षा विधि

द्रव्यानुयोग

प्रकाशित ग्रंथ

189. अष्टसहस्री प्रथम भाग
190. अष्टसहस्री द्वितीय भाग
191. अष्टसहस्री तृतीय भाग
192. नियमसार प्राभृत
193. नियमसार
194. न्यायसार
195. कातंत्ररूपमाला
196. समयसार पूर्वार्द्ध
197. समयसार उत्तरार्द्ध
198. प्रवचन निर्देशिका
199. जैन भारती
200. नियमसार पद्यावली
201. ज्ञानामृत

202. आलाप पद्धति
203. महावीर देशना
204. द्रव्य संग्रह
205. समाधितंत्र–इष्टोपदेश
206. कुन्दकुन्द मणिमाला
207. कुन्दकुन्द के भक्तिप्रसून
208. अनादि जैनधर्म

अप्रकाशित ग्रंथ

209. लघीयस्त्रयादि संग्रह
210. अष्टसहस्री सार
211. आप्तमीमांसा
212. आलापपद्धति
213. भावसंग्रह
214. नियमसार कलश
215. द्रव्यसंग्रहसार
216. तत्त्वार्थसूत्र एक अध्ययन
217. समयसार का सार
218. ध्यान साधना
219. अध्यात्मसार
220. जैनेन्द्र प्रक्रिया (पूर्वार्द्ध)
221. ज्ञानामृत (भाग -2)
222. षट्खण्डागम सिंद्धान्तचिंतामणि टीका समन्वित-पुस्तक 3
223. षट्खण्डागम सिंद्धान्तचिंतामणि टीका समन्वित-पुस्तक 4
224. षट्खण्डागम सिंद्धान्तचिंतामणि टीका समन्वित-पुस्तक 5
225. षट्खण्डागम सिंद्धान्तचिंतामणि टीका समन्वित-पुस्तक 6
226. षट्खण्डागम सिंद्धान्तचिंतामणि टीका समन्वित-पुस्तक 7
227. षट्खण्डागम सिंद्धान्तचिंतामणि टीका समन्वित-पुस्तक 8
228. षट्खण्डागम सिंद्धान्तचिंतामणि टीका समन्वित-पुस्तक 9
229. षट्खण्डागम सिंद्धान्तचिंतामणि टीका समन्वित-पुस्तक 10
230. षट्खण्डागम सिंद्धान्तचिंतामणि टीका समन्वित-पुस्तक 11
231. षट्खण्डागम सिंद्धान्तचिंतामणि टीका समन्वित-पुस्तक 12
232. षट्खण्डागम सिंद्धान्तचिंतामणि टीका समन्वित-पुस्तक 13
233. षट्खण्डागम सिंद्धान्तचिंतामणि टीका समन्वित-पुस्तक 14

गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी : एक दृष्टि में

जन्मस्थान : टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.
जन्मतिथि : आसोज सुदी 15 (शरदपूर्णिमा) वि. सं. 1991(सन् 1934)
गृहस्थ का नाम : कु. मैना
माता-पिता : श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन
आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत एवं गृहत्याग : ई. सन् 1952 में बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से।
क्षुल्लिका दीक्षा : चैत्र कृ. 1, ई. सन् 1953 को महावीरजी क्षेत्र (राज.) में
आर्यिका दीक्षा : वैशाख कृ. 2, ई. सन् 1956 को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती 108 आचार्यश्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी के करकमलों से।

साहित्यिक कृतित्व :

* अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं 250 विशिष्ट ग्रंथों की लेखिका।
* 1995 में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा ''डी.लिट्.'' की मानद उपाधि से विभूषित।

तीर्थ निर्माण प्रेरणा :

* हस्तिनापुर में जंबूद्वीप तीर्थ का निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली प्रयाग तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास, भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थनिर्माण, मांगीतुंगी में 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा का निर्माण।

महोत्सव प्रेरणा :

* पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में 10 वर्षीय भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव ।

शैक्षणिक प्रेरणा :

* 'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार आदि।

रथ प्रवर्तन प्रेरणा :

* जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (1982 से 1985), समवसरण श्रीविहार (1998 से 2002), महावीर ज्योति (2003-2004) का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।